दैनिक जागरण

Date:26-01-21

गणतंत्र के रूप में भारत का भाग्य

गिरीश्वर मिश्र, (लेखक पूर्व कुलपति एवं पूर्व प्रोफेसर हैं)

भारत एक विविधवर्णी संकल्पना है, जिसमें धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र, रूप-रंग, वेश-भूषा, रीति-रिवाज आदि की दृष्टि से व्यापक विस्तार मिलता है। यह विविधता यहीं नहीं खत्म होती, बल्कि पर्वत, घाटी, मैदान, पठार, समुद्र, नद-नदी, झील आदि भू-रचनाओं सहित वनस्पति और प्रकृति के सभी नैसर्गिक पक्षों में भी प्रचुर मात्रा में अभिव्यक्त है। विविध कलाओं और विचारों की दुनिया में भी यहां तरह-तरह की उपलब्धियां उल्लेखनीय हैं। भारत विशिष्टताओं का एक अनोखा पुंज है, जिसका विश्व में अन्यत्र कोई साम्य ढूंढ़ना मुश्किल है। भारत विविधता का एक महान उत्सव सरीखा है, जहां बाहर से कभी आक्रांता होकर आए शक, हूण, तुर्क, मुगल आदि अनेक संस्कृतियों का संगम होता रहा। काल क्रम में देश अंग्रेजों के अधीन उपनिवेश हो गया और तीन सदियों की उनकी गुलामी से 1947 में स्वतंत्र हुआ।

एक राष्ट्र राज्य (नेशन स्टेट) के रूप में देश ने सर्वानुमति से 1950 में संविधान स्वीकार किया, जिसके अधीन देश के लिए शासन-प्रशासन की व्यवस्था की गई। एक गणतंत्र के रूप में भारत की नियति इस पर निर्भर करती है कि हम इसकी समग्र रचना को किस तरह ग्रहण करते हैं और संचालित करते हैं? पिछले सात दशकों में संविधान को अंगीकार करने और उस पर अमल करने में अनेक प्रकार की कठिनाइयां आईं और जन-आकांक्षाओं के अनुरूप उसमें अब तक शताधिक संशोधन किए जा चुके हैं। राज्यों की संरचना बदली है और उनकी संख्या भी बढ़ी है। इस बीच देश की आंतरिक राजनीतिक-सामाजिक गतिविधियां लोकतंत्र को चुनौती देती रहीं, पर सारी उठापटक के बावजूद देश की सार्वभौम सत्ता अक्षुण्ण बनी रही। राजनीतिक और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के साथ राज्य की नीतियों में परिवर्तन भी होता रहा है। देश ने अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियां दर्ज की हैं। देश की यात्रा में विकास एक मूल मंत्र बना रहा, जिसमें उन्नति के लक्ष्यों की ओर कदम बढ़ाने की कोशिशें होती रहीं। देश तो केंद्र में रहा, परंतु वरीयताएं और उनकी और चलने के रास्ते बदलते रहे। पंडित नेहरू की समाजवादी दृष्टि से मनमोहन सिंह की उदार पूंजीवादी दृष्टि तक की यात्रा ने सामाजिक-आर्थिक जीवन के ताने-बाने को पुनर्परिभाषित किया। वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण ने आर्थिक प्रतियोगिता के अवसरों को नया आकार दिया, जिसके परिणामस्वरूप समृद्ध एवं अतिसमृद्ध लोगों की संख्या में अच्छी-खासी वृद्धि दर्ज हुई है।

भौतिक और सामाजिक संरचना के रूप में कोई भी देश एक गतिशील सत्ता होती है। अंग्रेजों ने भारत को एक गरीब, अशिक्षित और अंतरविरोधों से ग्रस्त बनाकर यहां से विदाई ली। इस सबके फलस्वरूप स्वतंत्र हुआ भारत वैचारिक रूप से वह नहीं रहा, जिसकी कल्पना महात्मा गांधी ने की थी। आज समृद्धि के साथ गरीबी बढ़ी है। कृषि क्षेत्र की सतत उपेक्षा ने स्थिति विस्फोटक बना दी है। सामाजिक सहकार की रचना में भी कई छिद्र होते गए। बेरोजगारी बढ़ी और शिक्षा की गुणवत्ता घटी है। आर्थिक उन्नति का आकर्षण इस तरह केंद्रीय होता गया कि शेष मानवीय मूल्य पिछड़ते गए। सीमित निजी स्वार्थ की सिद्धि के लिए संस्था और समाज के हित की अवहेलना आम बात होती जा रही है। राजनीतिक परिदृश्य में राष्ट्रीय चेतना और चिंता को महत्व न देकर छुद्र छोटे हितों को महत्व देने की प्रवृत्ति क्रमशः बलवती होती

गई। वंशवाद को प्रश्रय मिलने से राजनीति की सामाजिक जड़ें कमजोर पड़ रही हैं और अवसरवादिता को प्रश्रय मिल रहा है। अब राजनीतिज्ञ समाज से जुड़ने में कम और शासन करने में अधिक रुचि ले रहे हैं। आज ज्यादातर दलों में उम्मीदवारी के लिए मानदंड समाज सेवा, देशभक्ति से अधिक जाति-बिरादरी और बाहुबल बनते जा रहे हैं। इसके साथ ही चुनाव में बढ़ता खर्च राजनीति तक पहुंच को कठिन बनाता जा रहा है। इस पर रोक लगाने के लिए कोई तरीका काम नहीं कर रहा। इससे क्षुब्ध होकर बहुत से लोग खुद को राजनीति से दूर रहने में ही भलाई देखते हैं। इसका सीधा असर नागरिक जीवन की गुणवत्ता पर पड़ता है। राजनीति के क्षेत्र में योग्यता का विचार न होने का खामियाजा जनता को भुगतना पड़ता है। सत्ता का दुरुपयोग सत्ता का स्वभाव होता जा रहा है।

हमारा संविधान सामाजिक विविधता का आदर करता है। कानून की नजर में हर व्यक्ति एक-सा है, पर वास्तविकता समानता, समता और बंधुत्व के भाव की स्थापना से अभी भी दूर है। न्याय की व्यवस्था जटिल, लंबी और खर्चीली होती जा रही है। समाज में हाशिये पर स्थित समुदायों को वे सुविधाएं और अवसर नहीं मिलते, जो मुख्यधारा के लोगों को सहज ही उपलब्ध होते हैं। हाशिये के समाज की चर्चा करते हुए अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और ओबीसी के लोग सबसे पहले ध्यान में आते हैं। विस्थापित मजदूर, दिव्यांग, ट्रांसजेंडर, गरीबी रेखा के नीचे के लोग, महिलाएं, बच्चे, वृद्ध, मानसिक रूप से अस्वस्थ, अल्पसंख्यक भी हाशिये के समूह हैं। जेंडर आधारित घरेलू हिंसा और यौन हिंसा की घटनाएं जिस तरह बढ़ी हैं, वे चिंता का कारण हैं। देश के विकास का तकाजा तो ऐसे सहज वातावरण का विकास है, जो सबके लिए स्वस्थ, उत्पादक और सर्जनात्मक जीवन का अवसर उपलब्ध करा सके।

स्वतंत्रता का छंद नैतिक शुचिता और जन गण मन के प्रति सात्विक समर्पण से ही निर्मित होता है। इसके लिए दृढ़ संकल्प के साथ कदम बढ़ाना होगा। भारत जैसा गणतंत्र इकतारा न होकर एक वृंद वाद्य या ऑर्केस्ट्रा जैसा है, जिसके अनुशासित संचालन से ही मधुर सुरों की सृष्टि हो सकती है। देशराग से ही उस कल्याणकारी मानस की रचना संभव है, जिसमें सारे लोक के सुख का प्रयास संभव हो सकेगा। कोलाहल पैदा करना तो सरल है, क्योंकि उसके लिए किसी नियम-अनुशासन की कोई परवाह नहीं होती, पर संगीत से रस की सिद्धि के लिए निष्ठापूर्वक साधना की जरूरत पड़ती है। कोरोना महामारी के काल में विश्व के इस विशालतम गणतंत्र ने सीमा पर टकराव के साथ स्वास्थ्य, चुनाव, शिक्षा और अर्थव्यवस्था के आंतरिक क्षेत्रों में चुनौतियों का डटकर सामना किया और अपनी राह खुद बनाई। यह उसकी आंतरिक शक्ति और जिजीविषा का प्रमाण है।

Date:26-01-21

किसानों की आय दोगुना करने का उपाय

भरत झुनझुनवाला, (लेखक जाने-माने अर्थशास्त्री हैं)

इस सरकार ने अपने सामने दो उद्देश्य रखे हैं-किसानों की आय को दोगुना करना और न्यूनतम समर्थन मूल्य यानी एमएसपी में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं उसकी विसंगतियों को समाप्त करना। आय को दोगुना करने का कार्य सफल होता नहीं दिख रहा है। कारण यह कि सरकार की नीति सही दिशा में नहीं है। सरकार ने 2016 में एक अंतरमंत्रालय कमेटी बनाई थी, जिसने 2018 में अपनी रपट सौंपी। कमेटी ने पहला सुझाव दिया कि कृषि की उत्पादकता को बढ़ाया जाए, ताकि

किसानों की आय बढ़े। जैसे एक क्विंटल गेहूं के स्थान पर यदि किसान उसी भूमि से डेढ़ क्विंटल गेहूं का उत्पादन कर ले तो उसकी आय सहज ही बढ़ जाएगी, लेकिन कमेटी यह भूल गई कि उत्पादन बढ़ने के साथ अक्सर दाम गिर जाते हैं। यूं भी विश्व में कृषि उत्पादों के दाम पिछले तीन दशक से गिरते जा रहे हैं। कारण यह कि मनुष्य की भोजन की मांग सीमित है, जबकि उर्वरक आदि की मदद से अनाज का उत्पादन बढ़ता जा रहा है। कृषि उत्पादों की आपूर्ति बढ़ रही है और मांग कम होने से दाम में गिरावट आ रही है। कुछ वर्ष पूर्व पालनपुर के किसानों ने आलू की उत्तम फसल होने के बावजूद मंडी में उचित दाम न मिलने के कारण उसे सड़कों पर फेंक दिया था। इसलिए कमेटी की यह सिफारिश कि उत्पादकता बढ़ाई जाए, उलटी पड़ रही है।

कमेटी ने दूसरी संस्तुति की थी कि कृषि उत्पादों के मूल्यों में वृद्धि हासिल की जाए। यहां सरकार के दोनों उद्देश्यों में परस्पर अंतरविरोध दिखता है। कृषि उत्पादों के मूल्यों में वृद्धि हासिल करने का सीधा उपाय है कि एमएसपी में वृद्धि की जाए और उसे कानूनी रूप दिया जाए, लेकिन सरकार कह रही कि यह संभव नहीं। एमएसपी से खाद्य निगम को मजबूरन फसलों को खरीद कर भंडारण करना पड़ता है। बाद में उसे सस्ते दाम पर बेचना अथवा निर्यात करना पड़ता है, जिससे पुन: सरकार पर बोझ पड़ता है, लेकिन एमएसपी से किसानों की आय सुरक्षित हो जाती है। किसानों की आय को दोगुना करने और एमएसपी को ढीला करने में परस्पर अंतरविरोध है। इन परस्पर विरोधी उद्देश्यों के बीच भी रास्ता निकल सकता है। कमेटी ने एक संस्तुति यह की थी कि कृषि उत्पादों का विविधिकरण किया जाए। यह संस्तुति महत्वपूर्ण है।

आज छोटे से देश ट्यूनीशिया द्वारा जैतून की बड़ी मात्रा में खेती की जा रही है। इसी तरह फ्रांस अंगूर, नीदरलैंड ट्यूलिप, वियतनाम कॉफी, अमेरिका अखरोट का बड़े पैमाने पर उत्पादन कर रहे हैं। ये देश अपनी विशेष गुणवत्ता की खास फसलों को विश्व स्तर पर बेचकर भारी मुनाफा कमा रहे हैं। अपने देश में भी विभिन्न क्षेत्रों के किसानों ने विशेष फसलों में निपुणता हासिल की है। जैसे केरल में कालीमिर्च, भुसावल में केला, नासिक में प्याज, जोधपुर में लालमिर्च, गुलबर्गा में अंगूर और पूर्वोत्तर में अन्नानास एवं चाय और कूर्ग में कॉफी, लेकिन बासमती चावल और मसालों को छोड़ दें तो हम इनके निर्यात में सफल नहीं हैं। यदि हम उच्च कीमत की फसलों को उगाने में निपुणता हासिल कर लें तो किसानों की आय सहज ही दोगुना हो जाएगी।

यदि किसानों की आय दोगुना करने के पहले एमएसपी को कम किया गया तो किसानों की स्थिति और विकट हो जाएगी। ध्यान रहे केरल, भुसावल, नासिक आदि क्षेत्रों में एमएसपी को लेकर विरोध नहीं हो रहा है, क्योंकि उच्च कीमत की फसलों को उगाने से किसानों को वर्तमान में ही एमएसपी की तुलना में अधिक आय हो रही है। आय दोगुना करने की सरकार की मंशा सही होने के बावजूद उसकी नीतियां गलत हैं। भारत में उच्च मूल्य की फसलें उगाकर विश्व को सप्लाई करने की क्षमता है। ट्यूलिप, गुलाब आदि के फूलों का उत्पादन हम बारहों महीने कर सकते हैं- सर्दियों में मैदानों में, गर्मियों में पहाड़ों में और वर्षा के समय दक्कन के पठार में। राजस्थान में ट्यूनीशिया की तरह विशेष गुणवत्ता के जैतून, गुलबर्गा में फ्रांस की गुणवत्ता के अंगूर, उत्तर प्रदेश में पाकिस्तान के समकक्ष अमरूद और पहाड़ों में अमेरिका के समकक्ष अखरोट का उत्पादन हम निश्चित रूप से कर सकते हैं। उत्तराखंड में पौखाल नामक क्षेत्र में किसी किसान ने ग्लाइडोलस के फूल का उत्पादन किया, लेकिन उन्हें बाजारों तक पहुंचाने में इतनी अधिक कठिनाई आई कि हताश होकर किसान को उसकी पैदावार बंद करनी पड़ी। हमें सर्वप्रथम उच्च मूल्य की फसलों पर रिसर्च बढ़ाना चाहिए। अपने देश में इन सभी फसलों का उत्पादन तो हो जाता है, लेकिन उनकी गुणवत्ता वैश्विक मानकों के अनुरूप नहीं रहती। पूर्वोत्तर में

ऑर्किड के फूल बड़ी मात्रा में उगाए जा सकते हैं, जिनके एक गुच्छे का देश में 300 रुपये और विश्व बाजार में 10,000 रुपये तक का दाम मिल सकता है।

सरकार को फसलों पर रिसर्च को आउटसोर्स कर देना चाहिए। इसमें कॉरपोरेट क्षेत्र और एनजीओ का सहयोग लेना चाहिए। सरकार उन्हें मिशन मोड पर रिसर्च, प्रसार एवं मार्केटिंग का सम्मिलित ठेका दे। कृषि विज्ञान केंद्र स्थापित करने की यही मंशा थी, लेकिन वे अपने उद्देश्य से भटक गए हैं। देश के हर क्षेत्र में विशेष फसलें होती हैं, जैसे अयोध्या में लोबिया, मुरादाबाद में मेंथा, सागर में चिरौंजी, उत्तराखंड में जखिया, सहारनपुर में मक्का, बिहार में परवल इत्यादि। सरकार को इनके उत्पादन के लिए निजी क्षेत्र को ठेके देने चाहिए। यदि अमेरिका के निजी उद्यमी भारत को अखरोट का निर्यात कर सकते हैं तो हमारे उद्यमी अपनी उपज अमेरिका क्यों नहीं भेज सकते?

किसानों की आय को दोगुना करने एवं उच्च मूल्य के कृषि उत्पादों की संभावना को फलीभूत करने के कदम उठाए जाने चाहिए। इनके निर्यात के लिए बुनियादी संरचना को भी स्थापित करना चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह पहले किसानों की आय दोगुना करे। किसानों को चाहिए कि आय दोगुना हो जाने के बाद वे एमएसपी की मांग बंद कर दें।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:26-01-21

कमजोर होता वैश्विक कद

संपादकीय

गणतंत्र दिवस के अवसर पर होने वाली ट्रैक्टर रैली को लेकर उपजे उत्साह के दौरान इससे जुड़ी विडंबना पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। ट्रैक्टर रैली का आयोजन कृषि कानूनों का विरोध कर रहे किसानों ने किया है। दरअसल यह भी उन तमाम रियायतों में से एक है जो राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) सरकार ने संविधान से ली हैं। जिस तरह बिना बहस या मशविरे के तीन कृषि कानूनों को जल्दबाजी में पारित किया गया उसे देखकर यह तो नहीं कहा जा सकता है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने ऐसा ही सोचा होगा। यह कार्यशैली सरकार की उस अवमानना को ही दर्शाती है जो इंदिरा गांधी द्वारा सन 1975 में किए गए दुर्भाग्यपूर्ण प्रयासों के बाद सांविधानिक प्रावधानों के प्रति नजर आ रही है। यह ध्यान देने वाली बात है कि संसदीय समितियों को भेजे जाने वाले विधेयकों की तादाद में उल्लेखनीय कमी आई है। पंद्रहवीं लोकसभा में ऐसे 68 विधेयक थे जो 16वीं लोकसभा में 24 हैं। सन 2020 में एक भी विधेयक संसदीय समितियों के समक्ष नहीं भेजा गया। इसके बावजूद बीते दो वर्षों में ऐसे कानून पारित किए गए जो काफी महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 370 का खात्मा। इस कानून को बिना प्रभावितों यानी कश्मीरी लोगों से कोई सलाह-मशविरा किए आनन-फानन में पारित किया गया। राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर भी इसका उदाहरण है जो लाखों लोगों को नागरिकता से वंचित कर सकता है।

कार्यपालिका और न्यायपालिका दो अन्य ऐसे संस्थान हैं जिनसे आशा की जाती है कि वे संविधान की रक्षा करेंगे लेकिन उनकी भूमिका भी काफी कमजोर नजर आई है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण तो यही है कि कार्यपालिका ने अध्यादेशों के जरिये शासन का रास्ता चुना। अध्यादेश वे अस्थायी कानून हैं जो संसद का सत्र न चलने की स्थिति में पारित किए जाते हैं। ये कार्यपालिका को महामारी या अन्य आपातकालीन परिस्थितियों में शीघ्रकदम उठाने की सुविधा देते हैं। सभी सरकारें कभी न कभी अध्यादेश का इस्तेमाल करती हैं लेकिन इस सरकार ने इनका इस्तेमाल कुछ ज्यादा ही किया है। मोदी सरकार के पहले कार्यकाल में औसतन हर वर्ष 10 अध्यादेश पेश किए गए जो संप्रग के पहले और दूसरे कार्यकाल के औसतन 7.2 अध्यादेश प्रतिवर्ष से बहुत अधिक है।

संसद में भारी बहुमत के कारण हासिल यह असीमित कार्यकारी शक्ति सुरक्षा बलों की ताकत में भी घर कर गई है। इस बात को इस बात से समझा जा सकता है कि भीमा-कोरेगांव मामले में मामूली प्रमाणों के आधार पर सामाजिक कार्यकर्ताओं और शिक्षाविदों को बिना जमानत के लंबे समय से जेल में डाल रखा गया है। मुस्लिम कॉमेडियन मुनव्वर फारुखी को ऐसे हिंदू विरोधी चुटकुलों के लिए जेल में बंद किया गया है जो उन्होंने सुनाए भी नहीं। किसी को भविष्य में होने वाले संभावित अपराध के लिए जेल में बंद करना कानून का सरासर उल्लंघन है। फारुखी एक उदाहरण है, केंद्र सरकार द्वारा जम्मू कश्मीर का विशेष दर्जा समाप्त होने के बाद हजारों लोगों को अवैध तरीके से बंदी बनाया गया है। उल्लेखनीय है कि सर्वोच्च न्यायालय जिसके पास एक टीवी एंकर की गिरफ्तारी रोकने का समय था और जिसने कृषि कानूनों के मामले में स्वयं को असामान्य कार्यकारी शक्तियों से लैस कर लिया, उसने इन भारतीय नागरिकों के बंदी प्रत्यक्षीकरण के अधिकार के बचाव के लिए स्वत: संज्ञान नहीं लिया और न ही नागरिकता संशोधन अधिनियम की सांविधानिक स्थिति पर मनन किया।

लंबी अवधि में इस अनुदार राजनीति को सामूहिक संस्थागत समर्थन, स्वतंत्रता के बाद की बहुसांस्कृतिक धर्मनिरपेक्षता पर बनी सहमति को प्रतिस्थापित कर देगी। यह देश के लिए उचित नहीं। इसकी विश्व स्तर पर आलोचना हो रही है और देश का कद छोटा हो रहा है। वह भी ऐसे समय पर जब यह स्पष्ट है भारत कभी आक्रामक शक्ति नहीं बन सकता।

THE TIMES OF INDIA

Date:26-01-21

Remote Voting

EC initiative will enable migrants to vote, thereby furthering democracy

TOI Editorials

Yesterday was National Voters Day, celebrating the foundation day of the Election Commission in 1950. A highlight of the Constitution is introducing universal adult franchise in a country with a low literacy level. In pursuit of that aim the Election Commission has performed an admirable role, underlined recently by the avoidable controversy around US presidential elections that exploded into a violent crisis. On the eve of

National Voters Day, the Election Commission announced that it will begin mock trials for remote voting. This is an important development.

The Representation of the People Act, which provides the overarching framework to conduct elections, was enacted seven decades ago. In keeping with the times, it tied voting to the constituency where the voter is "ordinarily resident". Since then economic migration has increased dramatically. Also, technology to enable remote voting has been developed. Remote voting would be a giant step towards upholding universal adult franchise. Many economic migrants in India don't move for good and stick to their original constituency. Therefore, exercising their vote in both local and national elections is expensive and cumbersome.

The Election Commission has been working with IIT Madras to create the technology backbone for remote voting. The advent of EVMs has laid the platform for it. To begin with, remote voting may be possible only at designated centres outside a voter's constituency. Once the system proves robust and technology advances, it may eventually be possible to vote from home. This would especially help senior citizens and physically challenged voters. The Election Commission deserves credit for undertaking process improvements to uphold the spirit of the Constitution. Enabling migrants to vote would also lessen parochialism in election voting patterns, thereby helping the cause of national integration.

THE ECONOMIC TIMES

Date:27-01-21

Towards Stronger Indo-Bangla Tties

ET Editorials

The participation of a tri-services contingent from Bangladesh in India's 72nd Republic Day parade is an important moment for the bilateral relationship and New Delhi's neighbourhood policy. Bangladesh's participation in the parade and preference for Indian, as opposed to Chinese, help with Covid vaccines testify to the evolution of bilateral ties.

That Bangladesh fares well on social and economic fronts will make it easier for India to follow policies that boost bilateral ties. These ties have been neither smooth nor robust all along, despite the special circumstances of the relationship — India's support in the 1971Liberation War and diplomatic recognition of Bangladesh.

But there has been, in recent years, an appreciation of the importance of cultivating strong bilateral ties, building on those special circumstances. Different aspects of engagement and cooperation have been added on, over time. Nor is Bangladesh the only success story of India's Neighbourhood First policy.The supply of Covid vaccines as gift or grant assistance was not limited to the two million doses to Bangladesh. Other countries in the region, Bhutan, Nepal, the Maldives, Myanmar, Mauritius and the Seychelles, are recipients as well.

The New Delhi-Dhaka relationship is the most robust but that does not preclude strong relationships with other countries in the region. There are ups and downs. In assessing New Delhi's relationships in the region, one must not forget that countries, whatever their size, have agency in shaping their engagements. With two powers — India and China — in the region, bilateral relationships are unlikely to

be linear or straightforward. Countries could seek to use either to wrest concessions from the other. Robust relationships take work and time.

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date:27-01-21

Reform, For Future's Sake

Return to the old normal may take away from us a very potent opportunity

Bhupender Yadav, [The writer is BJP National General Secretary and a Rajya Sabha member]

Over the past 200 years or so, humankind has undergone massive changes. While change has been constant throughout human life on earth, science and technology gave humans the handles of control over a lot of those changes. Science and technology also accelerated the pace of change. Many say human life has reformed in all these years.

The point they seem to miss is that in all these years, we have mostly tried to regulate procedure and not really been working at reform. Regulation is not reform. Reform is a more fundamental concept, one that introduces positive changes. The pandemic, which stopped life in its tracks, was a reminder that we need reforms. With the vaccine now reaching people and restrictions on movements gone, it is possible we will soon push the lessons of the pandemic into oblivion and move on without reforming.

Governance, as a tool, is not about reforms. Governance is about laying out procedures for the smooth functioning of systems. But reforms go beyond that.

The fight today is between life and lifestyle. In the process of our evolution, we have built many institutions and each institution has taught us more regulation and less reform.

Human life is not eternal. Life is about more than just inhaling and exhaling air. Science and technology only create an illusion of giving us a quality life, with more apps and gadgets. For every problem, there is a machine. The machines have more machines to enhance their performance and give us an illusion of a life well lived. We judge the quality of life by an individual's ability to buy these machines.

But the quality of life can't improve just by automating daily functions. To attain a quality life, we have to reform. This reform requires change and actualisation of the inner self. This needs inner reforms. Artificial intelligence cannot regulate our minds and emotions. It cannot stop a pandemic from hitting us again, even if it can assist in making a vaccine faster through data collection, analysis and sharing.

We must also ponder over what needs more attention and care — regulation or life itself? This crucial question also provides answers to what is more important — regulation or reform. And what is reform exactly — a real change or more regulation? It is important to make these distinctions and set the right priorities.

Regulations can show the way but the end goal of society needs to be reform. We are faced with huge crises such as climate change, environmental degradation, crimes against people based on their life choices, and an increase in violent tendencies among children due to unmonitored exposure to online content and violence-promoting gaming.

To each problem our response is to bring in a new regulation — but in the absence of real reforms, we find our problems getting bigger and seemingly out of control.

Societies will have to get together and discuss the need for reforms. They must begin by asking the crucial question: Are we only destroying what we have or are we building something new?

Sustainable life goes beyond just planting trees or reducing our carbon footprint. It is also about a balance between regulation and change. The pandemic proved to us that all that we built in over 200 years has pushed us towards living more dangerously. We are now living in what is called the age of anxiety. Our youngsters are at the receiving end of this, with mental health experts warning that we are, as a society, literally living on the edge. Substance abuse is being seen as a refuge and the relationship between substance abuse and violent tendencies is well known.

No regulation can stop this until we move towards and discuss real reforms. During the lockdown, these life-changing questions were being asked and answered.

The safety of the vaccine and return to the old normal may take away from us a very real and potent opportunity to reform. We should not miss it at any cost.

Date:27-01-21

The right to life, and environment

The Constitution must guide us in crafting a distinctly Indian, climate-friendly development paradigm

Shloka Nath & Aaran Patel, [Nath and Patel are executive director and engagement consultant respectively, India Climate Collaborative]

India deserves a permanent seat at the high table of the United Nations, the UN Security Council (UNSC), but is almost sure not to have it anytime soon. Therefore, its two-year non-permanent stint at the UNSC should be viewed as a once-in-a-decade opportunity to clearly identify and pursue its national interests regionally and globally, rather than chase chimerical goals such as a permanent membership or to issue please-all platitudes.

Over the last seven decades, India has made distinct progress, but many core development challenges persist and we are yet to fulfil our constitutional promise. Climate change will only exacerbate existing inequalities through a range of cascading and coinciding crises that devastate the poor, marginalised and vulnerable. This Republic Day, it is worth remembering lessons from our Constitution as we prepare to

tackle the biggest crisis that looms over India and the world. In our constitutional commitment to human rights, we also have a charter for climate action.

In his last speech to the Constituent Assembly on November 25, 1949, B R Ambedkar famously asked what Indians must do "if we wish to maintain democracy not merely in form, but also in fact". In his view, it was essential "not to be content with mere political democracy" but to strive for social democracy as well. Ambedkar believed that we needed empowering, equitable and inclusive principles to govern our relationships with each other and the state.

These words from the Preamble — justice, liberty, equality and fraternity — serve as both hopeful and solemn reminders of the daunting path to achieving social democracy, especially in a warming world. We know that climate change is profoundly unjust, that it will increasingly impinge upon our freedom of movement, and that it could deny equality of status and opportunity to millions of disadvantaged citizens like the forest-dwelling communities who have contributed least to the crisis and yet stand to be hit the hardest. The evidence is clear that unless we rapidly move to reduce planet-warming greenhouse gas emissions, vast swathes of India could be inhospitable due to floods, droughts, heatwaves and increasingly erratic and unpredictable monsoon rains. The pandemic has provided a mere snapshot of how health and financial systems could be completely overwhelmed by climate impacts.

In order to tackle these challenges, fraternity or bandhuta, the more holistic and less gendered word used in the Hindi language Constitution, is a reminder of how Indians must embrace their interconnectedness. This is something we so easily forget when we buy into the divisive narratives of difference that make us fall apart, and so easily remember when disaster and tragedy unite us into falling together. Bandhuta can particularly serve as a call to action for the powerful to direct their resources towards shaping India's response to climate change and "assuring the dignity of the individual", as framed in the Preamble. Indian business and philanthropy can play a key role in building resilience by encouraging innovation, complementing the role of the state, and securing citizens' legislated rights. Climate philanthropy can help develop and pilot new solutions and inspire ambitious political action. This is crucial in the narrow window available in the wake of the pandemic during which India can build a green and just transition. A plethora of opportunities are currently on the margins but could become mainstream drivers for the three key pillars of jobs, growth and sustainability.

A distinctly Indian, climate-friendly development paradigm powered by clean energy could play an integral role in fostering social and economic justice by uplifting millions of Indians. Imagine rural livelihoods supported by clean-energy appliances such as grain crushers and cold chains that build decentralised access to electricity, reduce drudgery and foster entrepreneurship. Envision pilot projects with urban bodies to create local area plans that develop more habitable cities with renewable energy-driven public transportation, more pedestrian access and rejuvenation of green spaces and water bodies. Picture how Indian businesses can become more competitive for investment, spur innovation and nudge a more conducive regulatory environment through adopting renewable energy.

Our nation's welfare depends on healing the broken relationship between a broken economy and a broken ecology. We must equip and encourage people to think about the future, as well as the privations of the present. As the Centre for Policy Research's Shibani Ghosh explains, the right to life enshrined in Article 21 is increasingly interpreted as a right to environment. When this is read together with Articles 48A and 51A(g), there is a clear constitutional mandate to protect the environment that will only grow more important in the coming decades for citizens and the executive, legislature and judiciary.

Central to these considerations is the need for a uniquely Indian climate narrative, one that is both by and for Indians. On January 26, 1950, when the Constitution came into effect, India stepped out of the shadow of the empire to become an independent republic with power held by its own citizens and elected representatives. Seventy-one years later, India can build its own pathway out of the pandemic to become a climate leader aiming to secure a future where both people and nature can thrive. Much of this work can be rooted in the constitutional framework that binds together millions of Indians despite their myriad differences — a framework that is progressive in scope and ambitious in vision.

THE HINDU

Date:27-01-21

Pursuing national interests, at the UN high table

India's quest of its goals at the UNSC must have a clear agenda and also reflect its material and geopolitical limitations

Happymon Jacob teaches at Jawaharlal Nehru University and recently founded Council for Strategic and Defense Research, a New Delhi-based think tank

India deserves a permanent seat at the high table of the United Nations, the UN Security Council (UNSC), but is almost sure not to have it anytime soon. Therefore, its two-year non-permanent stint at the UNSC should be viewed as a once-in-a-decade opportunity to clearly identify and pursue its national interests regionally and globally, rather than chase chimerical goals such as a permanent membership or to issue please-all platitudes.

The UNSC, unfortunately, is where the leading powers of the international system dictate terms, show less powerful countries their 'rightful' place, fight among themselves even as they negotiate deals outside the horseshoe-tabled room. This is not where the lofty ideals of the human race come to fruition; nor are the members of the elite body persuaded by moral and ethical considerations. Seated at the table for the eighth time, New Delhi knows the game. And yet, sometimes it becomes a victim of its own past rhetoric and forgets to play the game to its advantage.

Timing of membership

New Delhi's entry into the UNSC coincides with the emergence of a new world order, one marked by systemic uncertainty, little care for global commons, absence of global leadership, the steady division of the world into rival blocs, and an age marked by unabashed pursuit of narrow national interests, putting even the rhetoric about a value-based global order on the backburner. Efforts by the newly-inaugurated

Biden administration in the United States, especially to rejoin the Paris Climate Agreement and, possibly, the Iran nuclear deal, may go on to ameliorate some of the harsh impact of this dog-eat-dog global (dis)order. However, the deep systemic malaise that has already set in will outlive the good 'intentions' of a democratic administration in Washington DC, delayed as they come.

The UNSC has also reached a point wherein its very relevance is in serious doubt, let alone serious expectations of it to live up to its primary objective: "the maintenance of international peace and security".

India is different too. It is no longer an ardent believer in the fantastical claims about a perfect world at harmony with itself, nor is it a timid bystander in global geopolitics. Contemporary India is more self-confident, resolute and wants to be a shaper of geopolitics even though it lacks the material wherewithal, economic heft, and domestic consensus, to action its ambitions. But at least its mindset has changed, from being satisfied on the margins to desiring to be at the centre stage. On the downside, however, its hard realism is not just a foreign policy attribute but reflective of and stems from its domestic political dynamics, worrying as it were.

New Delhi's pursuit of its interests at the UNSC should, therefore, reflect its material and geopolitical limitations, and its energies should be focused on a clearly identified agenda.

The China factor

New Delhi's tenure at the UNSC comes in the wake of its growing military rivalry with Beijing, the impact of which has already started to be felt at the UNSC meetings in New York. China's opposition to having India chair the Counter-Terrorism Committee (CTC) in 2022 was a precursor to the things to come on the high table. If the Biden administration were to continue with Donald Trump's policy of pushing back Chinese aggression including at the UNSC, New Delhi might find itself some useful allies in checking Chinese aggression in the region.

Greater Indian alignment with the West at the UNSC, an unavoidable outcome, could, however, widen the growing gulf between Moscow and New Delhi given Russia's increasing dependence on Beijing in more ways than one. However unfortunate that may be, it might not be possible for New Delhi to sit on the fence anymore; doing so would bring more harm than goodwill in an international system where battlelines are sharpening by the day.

India's seat at the UNSC is also significant vis-à-vis China because the next two years will be key to ensure checking further Chinese incursions along the Line of Actual Control and building up enough infrastructure and mobilising sufficient forces in the forward areas. Our experience from Doklam to Ladakh to now Arunachal Pradesh points in one direction — that Chinese land grab attempts will continue unabated and in pushing Beijing back, we would need all the assistance we can get.

Focus on terror

Terror is likely to be a major focus for India at the UNSC. External Affairs Minister S. Jaishankar's statement at the UNSC Ministerial Meeting on the 20th Anniversary of Security Council Resolution 1373 and the establishment of the Counter Terrorism Committee has set the stage for New Delhi's approach on the issue: "Terrorists are terrorists; there are no good and bad ones. Those who propagate this distinction have an agenda. And those who cover up for them are just as culpable".

New Delhi recently assumed the chair of the Taliban sanctions committee (https://bit.ly/2Yt8STH) which assumes significance given the fast-moving developments in Afghanistan and India's new-found desire to engage with the Taliban. The issue of terrorism has been a major theme in the country's national security and foreign policy discourse for decades now, more so of this government. India must, however, formulate its policy towards terrorism with far more diplomatic finesse and political nuance especially given that it is chairing the Taliban sanctions committee while courting the very same Taliban. More so, a nuanced policy towards the Taliban would be difficult to sustain without a similar treatment of domestic insurgencies. Put differently, if New Delhi wishes to make its mark on the global discourse and policy formulation on terrorism, it would need to approach them with far more clarity and intellectual coherence.

Yet another area New Delhi would want to focus on while seated at the high table would be to use the forum and its engagement there to build coalitions among like-minded states and set out its priorities for the next decade — from climate change to non-proliferation. While these topics might only concern the UNSC in varying degrees, New Delhi should use its bargaining power at the UNSC to pursue its national interests in other forums and domains as well.

Perhaps more significantly, New Delhi's UNSC strategy should involve shaping the narrative and global policy engagement vis-à-vis perhaps one of the biggest grand strategic concepts of our time — the Indo-Pacific. Given India's centrality in the Indo-Pacific region and the growing global interest in the concept, New Delhi would do well to take it upon itself to shape the narrative around it. In doing so, it should, through the UNSC and other means, court Moscow once again and assuage its concerns about the Indo-Pacific.

Think beyond reforms

New Delhi's pursuit of its national interest at and through the UNSC must also be tempered by the sobering fact that the UNSC is unlikely to admit new members any time soon, if ever at all. India's past global engagements and efforts have often been contingent on the hope that it would one day be admitted to the UNSC given its irrefutable claim. But a cursory glance at the recent debates on UNSC reforms and the state of the international system today should tell us that bending over backwards to please the big five to gain entry into the UNSC will not make a difference. So New Delhi must focus its energies on what it can achieve during the short period that it would be in the UNSC rather than what it wishes happened.

Date:27-01-21

We're not all in the same boat

Fighting inequality must be at the heart of our economic rescue and recovery efforts

Amitabh Behar is the CEO of Oxfam India

One of the most incisive and hard-hitting comments on the real import of the COVID-19 crisis came from none other than the United Nations Secretary General, Antonio Guterres. He said: "COVID-19 has been likened to an x-ray, revealing fractures in the fragile skeleton of the societies we have built. It is exposing

fallacies and falsehoods everywhere: The lie that free markets can deliver healthcare for all; the fiction that unpaid care work is not work; the delusion that we live in a post-racist world; the myth that we are all in the same boat. While we are all floating on the same sea, it's clear that some are in super yachts, while others are clinging to the drifting debris."

Oxfam International's annual report on inequality for 2021, aptly titled 'The Inequality Virus', puts the uncomfortable but imperative spotlight on the obscene inequality between the few in "super yachts" and the overwhelming majority "clinging to the drifting debris". The report was published on the opening day of the World Economic Forum's 'Davos Dialogues'.

Over the decades, India has faced mammoth challenges including wars and hunger. But the COVID-19 pandemic, which resulted in a migrant crisis, lockdowns, and serious contraction of the economy, and highlighted a crumbling health system, is an unprecedented test of the republic. This is the moment to use the 'COVID x-ray' to recognise the deep fissures caused by the growing inequality in the country; and for post-pandemic recovery, resolve to plan a fundamentally different economic model for ensuring an equal, just and sustainable future for all.

Uncomfortable truths

The Oxfam report highlights deeply uncomfortable truths of how the virus has exposed, fed off, and increased existing inequalities of wealth, gender and race. Over two million people have died, and hundreds of millions of people are being forced into poverty while many of the richest, both individuals and corporations, are thriving. Worldwide, billionaires saw their wealth increase by a staggering $3.9 trillion between March 18 and December 31, 2020. Within nine months, the top 1,000 billionaires, mainly white men, had recovered all the wealth they had lost, while recovery for the world's poorest people according to most estimates could take over a decade.

The pandemic, which is the greatest economic shock since the Great Depression, saw hundreds of millions of people lose their jobs and face destitution and hunger. This shock is set to reverse the decline in global poverty we have witnessed over the past two decades. It is estimated that the total number of people living in poverty could have increased by between 200 million and 500 million in 2020.

Globally, women are over-represented in the sectors of the economy that are hardest hit by the pandemic. If women were represented at the same rate as men in those sectors, 112 million women would no longer be at high risk of losing their incomes or jobs. The unequal impact of the pandemic, in addition to this gender dimension, also has a race dimension. In Brazil, for example, people of Afro-descent have been 40% more likely to die of COVID-19 than white people. The virus has also led to an explosion in the amount of underpaid and unpaid care work, done predominantly by women, and in particular women from groups facing racial and ethnic marginalisation.

The rich and poor in India

Sadly, India is a case in point. The country introduced one of the earliest and most stringent lockdowns in the face of the pandemic, whose enforcement brought its economy to a standstill triggering unemployment, hunger, distress migration and untold hardship.

The rich have been able to escape the pandemic's worst impact. White-collar workers have easily isolated themselves and have been working from home. The wealth of Indian billionaires increased by 35%

during the lockdown and by 90% since 2009. This is despite the fact that most of India has faced a loss of livelihood and the economy has dipped into recession. The increase in the wealth of the top 11 billionaires during the pandemic can easily sustain the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Scheme or the Health Ministry for the next 10 years. We have read astonishing stories of how Mukesh Ambani was making ₹90 crore per hour during the lockdown when 24% of the population was earning under ₹3,000 per month. According to the International Labour Organization, with almost 90% working in the informal economy in India, about 40 crore workers in the informal economy are at risk of falling deeper into poverty.

The Oxfam report undertook a survey of 295 economists from 79 countries. They included leading global economists such as Jayati Ghosh, Jeffrey Sachs and Gabriel Zucman. Of the respondents, 87% expected that income inequality in their country was going to significantly increase as a result of the pandemic. These levels of inequality are not viable and will have a deeply harmful impact. This concern is shared by the International Monetary Fund (IMF), the World Bank, and the Organisation for Economic Co-operation and Development. The IMF Managing Director, Kristalina Georgieva, said, "The impact will be profound […] with increased inequality leading to economic and social upheaval."

Fighting inequality

India just celebrated its 72nd Republic Day. We must recognise that a radical and sustained reduction in inequality is the indispensable foundation for a just India, as envisioned in the Constitution. The government must set concrete, time-bound targets to reduce inequality. We must move beyond the focus on GDP and start to value what really matters. Fighting inequality must be at the heart of economic rescue and recovery efforts. This must include gender and caste equality. Countries like South Korea, Sierra Leone and New Zealand have committed to reducing inequality as a national priority, showing what can be done.

Four things could be done on priority. One, invest in free universal healthcare, education, and other public services. Universal public services are the foundation of free and fair societies and have unparalleled power to reduce inequality, including gender and caste inequality. An immediate step could be delivering a free 'people's vaccine' to all citizens to tackle the pandemic.

Two, the virus has shown us that guaranteed income security is essential. For this to happen we need not just living wages but also far greater job security, with labour rights, sick pay, paid parental leave and unemployment benefits if people lose their jobs.

Three, reintroduce wealth taxes and ensure financial transaction taxes while putting an end to tax dodging. Progressive taxation is the cornerstone of any equitable recovery, as it will enable investment in a green, equitable future. Argentina showed the way by adopting a temporary solidarity wealth tax on the extremely wealthy that could generate over $3 billion.

Four, we need to invest in a green economy that prevents further degradation of our planet and preserves it for our children. The fight against inequality and the fight for climate justice are the same fight.

जनसत्ता

Date:27-01-21

कुपोषित बचपन

संपादकीय

जिस दौर में विकास के दावे बढ़-चढ़ कर किए जा रहे हों और अर्थव्यवस्था की मजबूती को इस तरह आंका जा रहा हो कि महामारी और पूर्णबंदी के बावजूद यह फिर से पहले की तरह चमकने को तैयार है, तो उसमें कुपोषण की खबरें चौंकाती हैं! लेकिन सच यह है कि पिछले करीब एक दशक से एक ओर विकास और अर्थव्यवस्था के आंकड़े सामने रखे जाते हैं और दूसरी ओर भारी तादाद में आम गरीब और कमजोर तबके के परिवारों को संतोषजनक तरीके से पेट भर खाना पाने के लिए जद्दोजहद करना पड़ा है। ऐसे लोगों की संख्या बड़ी है, जो सरकार की ओर से चलाए जा रहे कल्याण कार्यक्रमों के तहत मिलने वाले या फिर सस्ती दरों पर मुहैया कराए गए अनाज के बूते जिंदा रहते हैं। लेकिन पिछले कुछ समय से उन कार्यक्रमों की क्या स्थिति चल रही है, यह समझना मुश्किल नहीं है। इस स्थिति में दोहरी और गंभीर मार ज्यादा तीखी इसलिए भी हो गई है कि पूर्णबंदी की शुरूआत के महीनों में सख्ती और अब उसमें ढिलाई के बावजूद रोजी-रोजगार के हालात सामान्य नहीं हुए हैं और भारी तादाद में ऐसे परिवार हैं जिनके सामने आज जीवन-संघर्ष की हालत है।

हाल के महीनों में ऐसी आबादी का दायरा और बढ़ता गया है, जो पोषणयुक्त भोजन से दूर महज कामचलाऊ खाना मिलने भर से अपनी जिंदगी चला रहे थे। ऐसे में अंदाजा लगाया जा सकता है कि इस आबादी के बीच बच्चों के पोषण की स्थिति क्या होगी और उनके कमजोर होने की हालत में बीमारियों और अन्य चुनौतियों के सामने उनकी जीवन-संभाव्यता कितनी होगी। शायद यही वजह है कि केंद्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को पत्र लिख कर मुख्य सचिवों को बच्चों में गंभीर कुपोषण का पता लगाने और जरूरत पड़ने पर उन्हें अस्पतालों या आयुष केंद्रों में भिजवाने को कहा है। पत्र के मुताबिक यह प्रक्रिया इस महीने के आखिर तक पूरी हो जानी चाहिए। निश्चित रूप से इस पहल के पीछे बच्चों में कुपोषण के हालात के प्रति चिंता दिखाई देती है, मगर बच्चों में गंभीर कुपोषण की हकीकत कोई दो-चार दिनों में खड़ी हुई मुश्किल नहीं है। यह लंबे समय तक खानपान में कमी या पर्याप्त पोषण नहीं मिलने से पैदा हुई व्यापक समस्या है। ऐसे में यह समझना मुश्किल है कि अगले चार-पांच दिनों के भीतर इस निर्देश पर पूरी तरह अमल कैसे सुनिश्चित कराया जा सकेगा!

यह किसी से छिपा नहीं है कि कमजोर तबकों के परिवारों के बच्चों के बीच कुपोषण की समस्या से पार पाने के लिए एकीकृत बाल विकास सहित तमाम कार्यक्रमों की पिछले करीब साल भर से क्या हालत रही है ? स्कूलों के बंद रहने के दौरान दोपहर के भोजन से लेकर आंगनबाड़ी योजना के तहत भी बच्चों को कितना खाना मिल सका है, यह भी जगजाहिर रहा है। ऐसे में पहले ही गरीबी की मार झेल रहे परिवारों के बच्चों में कुपोषण की स्थिति ज्यादा गंभीर हुई। हालांकि पूर्णबंदी के दौरान रोजी-रोजगार के लगभग खत्म हो जाने के चलते बड़ी संख्या में लोग दो शाम के भोजन तक से लाचार हो गए थे। ऐसे लोगों की मदद के लिए सरकार की ओर से कुछ राशन मुहैया कराने की व्यवस्था की गई थी। मगर उसका महत्त्व सीमित रहा। वैश्विक पोषण रिपोर्ट, 2020 के मुताबिक भारत में पोषण की स्थिति बेहद गंभीर होती जा रही है और दुनिया भर में केवल नाइजीरिया और इंडोनेशिया जैसे देश ही ऐसे हैं, जहां हमसे खराब हालत है। ऐसे में इस समस्या पर बिना देर किए तुरंत ध्यान देने की जरूरत समझी जा सकती है।